॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

मण्डल ब्राह्मण उपनिषद

विषय सूची

॥अथ मण्डलब्राह्मणोपनिषत् ॥ 3

मण्डल ब्राह्मण उपनिषद 4

प्रथमं ब्राह्मणम्-प्रथम ब्राह्मण 4

द्वितीयं ब्राह्मणम्-द्वितीय ब्राह्मण 11

तृतीयं ब्राह्मणम्-तृतीय ब्राह्मण 20

चतुर्थं ब्राह्मणम्-चतुर्थ ब्राह्मण 23

पंचमं ब्राह्मणम्-पांचवां ब्राह्मण 25

शान्तिपाठ 28

॥ श्री हरि ॥

॥अथ मण्डलब्राह्मणोपनिषत् ॥

॥ हरिः ॐ ॥

बाह्यान्तस्तारकाकरं व्योमपञ्चकविग्रहम् ।
राजयोगैकसंसिद्धं रामचन्द्रमुपास्महे ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वह परब्रह्म पूर्ण है और वह जगत ब्रह्म भी पूर्ण है, पूर्णता से ही पूर्ण उत्पन्न होता है। यह कार्यात्मक पूर्ण कारणात्मक पूर्ण से ही उत्पन्न होता है। उस पूर्ण की पूर्णता को लेकर यह पूर्ण ही शेष रहता है।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भगवान् शांति स्वरुप हैं अत: वह मेरे अधिभौतिक, अधिदैविक और अध्यात्मिक तीनो प्रकार के विघ्नों को सर्वथा शान्त करें ।

॥ हरिः ॐ ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ मण्डलब्राह्मणोपनिषत् ॥

मण्डल ब्राह्मण उपनिषद

प्रथमं ब्राह्मणम्-प्रथम ब्राह्मण

ॐ याज्ञवल्क्यो ह वै महामुनिरादित्यलोकं जगाम ।
तमादित्यं नत्वा भो भगवन्नादित्यात्मतत्त्वमनुब्रूहीति ।
सहोवाच नारायणः । ज्ञानयुक्तयमाद्यष्टाङ्गयोग उच्यते ।
शीतोष्णाहारनिद्राविजयः सर्वदा शान्तिर्निश्चलत्वं
विषयेन्द्रियनिग्रहश्चैते यमाः । गुरुभक्तिः सत्यमार्गानुरक्तिः
सुखागतवस्त्वनुभवश्च तद्वस्त्वनुभवेन तुष्टिर्निःसङ्गता एकान्तवासो
मनोनिवृत्तिः फलानभिलाषो वैराग्यभावश्च नियमाः ।
सुखासनवृत्तिश्चीरवासाश्चैवमासननियमो भवति ।
पूरककुम्भकरेचकैः षोडशचतुष्षष्टिद्वात्रिऽंशत्सङ्ख्यया यथाक्रमं
प्राणायामः । विषयेभ्य इन्द्रियार्थेभ्यो मनोनिरोधनं प्रत्याहारः ।
सर्वशरीरेषु चैतन्यैकतानता ध्यानम् ।
विषयव्यावर्तनपूर्वकं चैतन्ये चेतःस्थापनं धारणं भवति ।
ध्यानविस्मृतिः समाधिः । एवं सूक्ष्माङ्गानि । य एवं वेद स
मुक्तिभाग्भवति ॥ १॥

महामुनि याज्ञवल्क्य (एकबार) आदित्यलोक में गये और वहाँ भगवान् आदित्य को प्रणाम करके कहा-हे भगवन् आदित्य ! आप हमें आत्म

तत्त्व का उपदेश प्रदान करें॥ तब सूर्यनारायण ने कहा-तत्त्वज्ञान सहित यम-नियम आदि को अष्टाङ्ग योग कहा जाता है॥ सर्दी-गर्मी, आहार एवं निद्रा पर विजय प्राप्त करना, सर्वदा शान्त रहना और निश्चल होकर इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना, ये सभी यम हैं॥ मंडलब्राह्मणोपनिषद् गुरु भक्ति, सत्य मार्ग में अनुरक्ति, यथालाभ-सन्तोष, एकान्त निवास, अनासक्ति, मनोनिवृत्ति, फल की इच्छा न करना और वैराग्य भाव-ये सभी नियम हैं॥ सुखासन वृत्ति (सुखपूर्वक एक वृत्ति में दीर्घकाल तक स्थित रहना) और चिरनिवास (बिना प्रयास के चिरकाल तक एक स्थिति में रहना)-ये आसन के नियम हैं॥ षोडश मात्राओं द्वारा पूरक, चौंसठ मात्राओं द्वारा कुम्भक और बत्तीस मात्राओं द्वारा रेचक करने को प्राणायाम कहते हैं॥ इन्द्रियों के विषयों से मन को निरोध करना प्रत्याहार कहलाता है॥ विषयों से निरोधित मन को चैतन्य सत्ता में स्थित करना धारणा है॥ सभी शरीरों में एक ही चैतन्य तत्त्व विद्यमान है, इसी एकतानता (निरन्तर चिन्तन) को ध्यान कहा गया है और ध्यान को भी विस्मृत कर देना (भूल जाना) समाधि है॥ इस प्रकार ये सभी सूक्ष्म अङ्ग हैं, जो इन्हें इस प्रकार जानता है,वह मुक्ति का अधिकारी होता है॥१॥

देहस्य पञ्चदोषा भवन्ति कामक्रोधनिःश्वासभयनिद्राः ।
तन्निरासस्तु निःसङ्कल्पक्षमालघ्वाहारप्रमाददातत्त्वसेवनम् ।
निद्राभयसरीसृपं हिंसादितरङ्गं तृष्णावर्तं दारपङ्कं संसारवार्धिं
तर्तुं सूक्ष्ममार्गमवलम्ब्य सत्त्वादिगुणानतिक्रम्य तारमवलोकयेत् ।

भ्रूमध्ये सच्चिदानन्दतेजःकूटरूपं तारकं ब्रह्म । तदुपायं लक्ष्यत्रयावलोकनम् । मूलाधारादारभ्य ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं सुषुम्ना सूर्याभा । मृणालतन्तुसूक्ष्मा कुण्डलिनी । ततो तमोनिवृत्तिः । तद्दर्शनात्सर्वपापनिवृत्तिः । तर्जन्यग्रोन्मीलितकर्णरन्ध्रद्वये फूत्कारशब्दो जायते । तत्र स्थिते मनसि चक्षुर्मध्य नीलज्योतिः पश्यति । एवं हृदयेऽपि । बहिर्लक्ष्यं तु नासाग्रे चतुः-षडष्टदशद्वादशाङ्गुलीभिः क्रमान्नीलद्युतिश्यामत्व-सदृग्रक्तभङ्गीस्फुरत्पीतवर्णद्वयोपेतं व्योमत्वं पश्यति स तु योगी चलनदृष्ट्या व्योमभागवीक्षितुः पुरुषस्य दृष्ट्यग्रे ज्योतिर्मयूखा वर्तन्ते । तद्दृष्टिः स्थिरा भवति । शीर्षोपरि द्वादशाङ्गुलिमानज्योतिः पश्यति तदाऽमृतत्वमेति । मध्यलक्ष्यं तु प्रातश्चित्रादिवर्णसूर्यचन्द्रवह्निज्वाला-वलीवत्तद्विहीनान्तरिक्षवत्पश्यति । तदाकाराकारी भवति । अभ्यासान्निर्विकारं गुणरहिताकाशं भवति । विस्फुरत्तारकाकारगाढ तमोपमं पराकाशं भवति । कालानलसमं द्योतमानं महाकाशं भवति । सर्वोत्कृष्टपरमाद्वितीयप्रद्योतमानं तत्त्वाकाशं भवति । कोटिसूर्यप्रकाशं सूर्याकाशं भवति । एवमभ्यासात्तन्मयो भवति । य एवं वेद ॥ २॥

इस शरीर के काम,क्रोध,नि:श्वास(श्वासावरोध),भय और निद्रा(अज्ञान-निद्रा)-ये पाँच दोष होते हैं॥ संकल्परहित होना, क्षमाशील होना, अल्पाहार करना, निर्भय होना और तत्त्व चिन्तन करना, ये उपर्युक्त (शरीर के)दोषों को दूर करने के साधन हैं॥ निद्रा (अज्ञान-निद्रा) और भय सर्प हैं, हिंसा आदि तरंगें हैं, तृष्णा भंवर है, स्त्री पङ्क है (स्त्री के प्रति भोग्याभाव कीचड़ है)-ऐसे संसार रूपी सागर से पार जाने के लिए सूक्ष्म मार्ग का अवलम्बन लेकर सत्त्व आदि गुणों से परे

(ऊपर) होकर तारक ब्रह्म का दर्शन करना चाहिए (उसका ध्यान करना चाहिए)॥ दोनों भौंहों के मध्य में सच्चिदानन्द स्वरूप, तेजः-सम्पन्न, कूट रूप तारक ब्रह्म का निवास है॥ उस (तारक ब्रह्म) की प्राप्ति के उपायों में लक्ष्यत्रय का अवलोकन करना चाहिए॥ मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त सूर्य के समान आभा वाली सुषुम्ना नामक नाड़ी है। उसके बीच में उससे कोटिगुनी मृणाल तन्तु जितनी सूक्ष्म कुण्डलिनी है। वहाँ (उसके ज्ञान से) तमोगुण की निवृत्ति होती है। उसके दर्शन से समस्त पाप विनष्ट होते हैं॥ तर्जनी अँगुली के अग्रभाग से दोनों कानों को बन्द करने पर उस (साधक) के कर्णछिद्रों से फूत्कार शब्द होता है। जब उस शब्द में मन को स्थिर किया जाता है, तब नेत्रों के मध्य में नीलवर्ण ज्योति का दर्शन होता है। इसी प्रकार हृदय में भी (वही ज्योति) दिखाई पड़ती है॥ बाह्य लक्ष्य यह है कि (जिसे) नासिका के अग्रभाग से चार, छः, आठ, दस और बारह अंगुल की दूरी पर क्रम से नीलवर्ण, श्यामवर्ण, रक्तवर्ण, पीतवर्ण और दो रंगों के मिश्रित रंग युक्त आकाश दिखाई पड़ता है, वह योगी हो जाता है॥ चल दृष्टि (चञ्चल दृष्टि) से व्योम भाग को देखते हुए पुरुष की दृष्टि के अग्रभाग में ज्योति युक्त किरणें दिखाई पड़ती हैं, उससे दृष्टि में स्थिरत्व आ जाता है॥ शीर्ष (मस्तिष्क) के ऊपर द्वादशाङ्गुल की दूरी पर ज्योति दिखाई पड़ती है। उसे देखने वाले को अमरत्व प्राप्त हो जाता है॥ मध्य लक्ष्य इस प्रकार है कि प्रातःकालीन वेला में सूर्य, चन्द्र और अग्नि ज्वालवत् और उससे विहीन अन्तरिक्षवत् दिखाई देता है। उसके आकार की तरह ही आकार वाला हो जाता है॥ अभ्यास के द्वारा वह विकाररहित, त्रिगुणातीत आकाश रूप होता है। अत्यंत प्रगाढ़ प्रकाशयुक्त तारकों के समान पराकाश होता है। कालाग्नि के समान

प्रकाशमान महाकाश होता है। सर्वोत्कृष्ट परम अद्वितीय और विशिष्ट रूप से द्योतमान प्रकाश तत्त्वाकाश होता है। करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान सूर्याकाश होता है॥ जो इस तथ्य को इस प्रकार जानता है, वह अभ्यासपूर्वक तन्मय हो जाता है॥२॥

तद्योगं च द्विधा विद्धि पूर्वोत्तरविभागतः ।
पूर्वं तु तारकं विद्यादमनस्कं तदुत्तरमिति ।
तारकं द्विविधम् । मूर्तितारकममूर्तितारकमिति ।
यदिन्द्रियान्तं तन्मूर्तितारकम् । यद्भ्रूयुगातीतं
तदमूर्तितारकमिति । उभयमपि मनोयुक्तमभ्यसेत् ।
मनोयुक्तान्तरदृष्टिस्तारकप्रकाशाय भवति ।
भ्रूयुगमध्यबिले तेजस आविर्भावः । एतत्पूर्वतारकम् ।
उत्तरं त्वमनस्कम् । तालुमूलोर्ध्वभागे महाज्योतिर्विद्यते ।
तद्दर्शनादणिमादिसिद्धिः । लक्ष्येऽन्तर्बाह्ययां
दृष्टौ निमेषोन्मेषवर्जितायां च इयं शाम्भवी
मुद्रा भवति । सर्वतन्त्रेषु गोप्यमहाविद्या भवति ।
तज्ज्ञानेन संसारनिवृत्तिः । तत्पूजनं मोक्षफलदम् ।
अन्तर्लक्ष्यं जलज्योतिःस्वरूपं भवति । महर्षिवेद्यं
अन्तर्बाह्येन्द्रियैरदृश्यम् ॥ ३॥

उस योग के दो विभाग हैं। एक पूर्व तथा दूसरा उत्तर । पूर्व विभाग को तारक ब्रह्म कहते हैं और उत्तर विभाग को अमनस्क कहते हैं। तारक ब्रह्म के भी दो प्रकार हैं-एक मूर्तितारक और दूसरा अमूर्ति तारक। जो इन्द्रियों तक सीमित है, वह मूर्तितारक है, जो दोनों भौंहों से परे- आगे है, वह अमूर्तितारक है॥ इन दोनों (मूर्तितारक और

अमूर्तितारक) का मनयुक्त (मनोयोग पूर्वक) होकर अभ्यास करना चाहिए; क्योंकि मनयुक्त अन्तर्दृष्टि तारक ब्रह्म को प्रकट करने में सक्षम होती है॥ इसके बाद भ्रूयुगल के मध्य स्थित छिद्र में तेज आविर्भूत होता है। यह पूर्व तारक ब्रह्म है॥ उत्तर विभाग तो अमनस्क (मनरहित) होता है। तालुमूल के ऊर्ध्व भाग में महाज्योति का निवास होता है। उसके दर्शन से अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं॥ जब लक्ष्य में अन्त:-बाह्य दृष्टि निर्निमेष (स्थिर) हो जाती है, तो यह शाम्भवी मुद्रा होती है। समस्त तन्त्रों में गोपनीय यह ब्रह्म विद्या है। उसके ज्ञान से संसार से निवृत्ति हो जाती है, उसका पूजन मोक्षरूपी फल प्रदान करता है॥ अन्तर्लक्ष्य दीप्तिमान् ज्योति के समान है, इसे महर्षिगण ही जान सकते हैं। यह बाह्य और आन्तरिक इन्द्रियों (नेत्रों-मन आदि) के द्वारा अगोचर है॥३॥

सहस्रारे जलज्योतिरन्तर्लक्ष्यम् । बुद्धिगुहायां
सर्वाङ्गसुन्दरं पुरुषरूपमन्तर्लक्ष्यमित्यपरे ।
शीर्षान्तर्गतमण्डलमध्यगं पञ्चवक्त्रमुमासहायं
नीलकण्ठं प्रशान्तमन्तर्लक्ष्यमिति केचित् ।
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तर्लक्ष्यमित्येके ।
उक्तविकल्पं सर्वमात्मैव । तल्लक्ष्यं शुद्धात्मदृष्ट्या
वा यः पश्यति स एव ब्रह्मनिष्ठो भवति । जीवः
पञ्चविंशकः स्वकल्पितचतुर्विंशतितत्त्वं परित्यज्य
षड्विंशः परमात्माहमिति निश्चयाज्जीवन्मुक्तो भवति ।
एवमन्तर्लक्ष्यदर्शनेन जीवन्मुक्तिदशायां स्वयमन्तर्लक्ष्यो
भूत्वा परमाकाशाखण्डमण्डलो भवति ॥ ४॥

सहस्रार दल में दीप्तिमान् ज्योति के समान अन्तर्लक्ष्य है। कुछ अन्य लोग ऐसा मानते हैं कि बुद्धि रूपी गुहा में सर्वाङ्ग सुन्दर पुरुष का रूप अन्तर्लक्ष्य है। कितने ही ऐसा नानते हैं कि शीर्ष के अन्तर्गत स्थित मण्डल के मध्य पाँच मुख वाले और उमा सहित नीलकण्ठ भगवान् शंकर का प्रशान्त रूप भी अन्तर्लक्ष्य है। अङ्गुष्ठ मात्र पुरुष ही अन्तर्लक्ष्य है, ऐसा भी कितने ही विद्वान् मानते हैं॥ उपर्युक्त सभी विकल्प (विभेद) आत्मा के ही हैं। उस लक्ष्य (अन्तर्लक्ष्य) को जो शुद्ध आत्म-दृष्टि से देखता है, वह ब्रह्मनिष्ठ हो जाता है॥ जीव पच्चीसवाँ तत्त्व है। स्वकल्पित चौबीस तत्त्वों को त्यागकर छब्बीसवाँ मैं स्वयं परमात्मा हूँ, जब वह ऐसा निश्चय करता है, तो इस निश्चय से वह जीवन्मुक्त हो जाता है॥ इस प्रकार अन्तर्लक्ष्य का दर्शन प्राप्त कर लेने से वह (जीव) जीवन्मुक्त की ओर अग्रसर होते हुए स्वयं अन्तर्लक्ष्य होकर परम आकाशस्वरूप अखण्ड मण्डल हो जाता है॥४॥

॥ इति प्रथमं ब्राह्मणम् ॥१॥

॥ प्रथम ब्राह्मण समात ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ मण्डलब्राह्मणोपनिषत् ॥

॥ मण्डल ब्राह्मण उपनिषद॥

द्वितीयं ब्राह्मणम्-द्वितीय ब्राह्मण

अथ ह याज्ञवल्क्य आदित्यमण्डलपुरुषं पप्रच्छ ।
भगवन्नन्तर्लक्ष्यादिकं बहुधोक्तम् । मया तन्न
ज्ञातम् । तद्ब्रूहि मह्यम् । तदुहोवाच पञ्चभूत-
कारणं तडित्कूटाभं तद्वच्चतुःपीठम् । तन्मध्ये
तत्त्वप्रकाशो भवति । सोऽतिगूढ अव्यक्तश्च ।
तज्ज्ञानप्लवाधिरूढेन ज्ञेयम् । तद्बाह्याभ्यन्तर्लक्ष्यम् ।
तन्मध्ये जगल्लीनम् । तन्नादबिन्दुकलातीतमखण्डमण्डलम् ।
तत्सगुणनिर्गुणस्वरूपम् । तद्वेत्ता विमुक्तः । आदावग्निमण्डलम् ।
तदुपरि सूर्यमण्डलम् । तन्मध्ये सुधाचन्द्रमण्डलम् ।
तन्मध्येऽखण्डब्रह्मतेजोमण्डलम् । तद्विद्युल्लेखावच्छुक्ल-
भास्वरम् । तदेव शाम्भवीलक्षणम् । तद्दर्शने तिस्रो मूर्तय
अमा प्रतिपत्पूर्णिमा चेति । निमीलितदर्शनममादृष्टिः ।
अर्धोन्मीलितं प्रतिपत् । सर्वोन्मीलनं पूर्णिमा भवति । तासु
पूर्णिमाभ्यासः कर्तव्यः तल्लक्ष्यं नासाग्रम् । तदा
तालुमूले गाढतमो दृश्यते । तदभ्यासादखण्डमण्डलाकार-
ज्योतिर्दृश्यते । तदेव सच्चिदानन्दं ब्रह्म भवति । एवं
सहजानन्दे यदा मनो लीयते तदा शान्तो भवी भवति । तामेव
खेचरीमाहुः । तदभ्यासान्मनःस्थैर्यम् । ततो वायुस्थैर्यम् ।
तच्चिह्नानि । आदौ तारकवद्दृश्यते । ततो वज्रदर्पणम् । तत

उपरि पूर्णचन्द्रमण्डलम् । ततो वह्निशिखामण्डलं क्रमाद्दृश्यते ॥ १॥

इसके पश्चात् ऋषि याज्ञवल्क्य ने आदित्य मण्डल में स्थित पुरुष से प्रश्न किया-भगवन् ! अन्तर्लक्ष्य आदि के विषय में बहुत कुछ कहा गया । उसे मैं नहीं समझ सका। उसे अब आप स्वयं ही मुझे समझाएँ॥ (यह सुनकर) सूर्यनारायण ने कहा-पञ्चभूतों का आदिकारण विद्युत् पुंज के समान है, उसमें एक चतु:पीठ है, जिसके बीच में तत्त्व का प्रकाश होता है, वह प्रकाश अतिगूढ़ और अव्यक्त है॥ वह (अव्यक्त प्रकाश) ज्ञानरूपी प्लव (नौका) में आरूढ़ व्यक्ति के लिए जानने योग्य है। वह बाह्य और आभ्यन्तर लक्ष्य है॥ उसी के मध्य जगत् लीन हो जाता है। वह नाद, बिन्दु और कला से परे अखण्ड मण्डल है। वह सगुण और निर्गुण स्वरूप है। उसको जानने वाला विमुक्त हो जाता है॥ सर्वप्रथम अग्नि मण्डल है। उसके ऊपर सूर्य मण्डल है। उसके बीच में सुधा स्वरूप चन्द्र मण्डल है। उसके बीच में अखण्ड ब्रह्म का तेजोमण्डल है। वह विद्युत् रेखावत् श्वेत और प्रकाशमान है। वही शाम्भवी मुद्रा का लक्षण है॥ उसका दर्शन करने से तीन स्वरूप दृष्टि में आते हैं। ये रूप-अमावस्या, प्रतिपदा और पूर्णिमा रूप हैं। निमीलित (पलक बन्द होने की स्थिति) दृष्टि अमावस्या स्वरूप है, अर्धनिमीलित दृष्टि प्रतिपदा स्वरूप है। और पूरी तरह खुली हुई दृष्टि पूर्णिमा स्वरूप है। इसलिए पूर्णिमा रूप दृष्टि का ही अभ्यास करना चहिए॥ उस (पूर्णिमारूप दृष्टि) का लक्ष्य नासिकाग्र है। जिस समय तालुमूल में प्रगाढ़ अन्धकार के दर्शन होते हैं, उस समय अभ्यास के द्वारा अखण्ड मण्डलाकार ज्योति दिखाई

देती है। वही सच्चिदानन्द ब्रह्म है॥ इस प्रकार जब सहजानन्द में मन लीन हो जाता है, तब शाम्भवी मुद्रा (सिद्ध) होती है और उसे ही खेचरी मुद्रा कहते हैं॥ उसके अभ्यास से मन स्थिर हो जाता है, तत्पश्चात् बुद्धि स्थिर होती है॥ उसके चिह्न इस प्रकार हैं- सर्वप्रथम तारा के समान दिखाई देता है, तत्पश्चात् वज्र दर्पण (अर्थात् हीरे का दर्पण) जैसा दिखाई देता है, इसके पश्चात् पूर्ण चन्द्र मण्डल दिखाई देता है, इसके बाद नवरत्न प्रभा का मण्डल दृश्यमान होता है, इसके बाद मध्याह्न का सूर्य मण्डल परिलक्षित होता है, तत्पश्चात् क्रमशः अग्निशिखा मण्डल दिखाई देता है॥१॥

तदा पश्चिमाभिमुखप्रकाशः स्फटिकधूम्र-
बिन्दुनादकलानक्षत्रखद्योतदीपनेत्रसवर्णनव-
रत्नादिप्रभा दृश्यन्ते । तदेव प्रणवस्वरूपम् ।
प्राणापानयोरैक्यं कृत्वा धृतकुम्भको नासाग्र-
दर्शनदृढभावनया द्विकराङ्गुलिभिः षण्मुखी-
करणेन प्रणवध्वनिं निशम्य मनस्तत्र लीनं भवति ।
तस्य न कर्मलेपः । रवेरुदयास्तमययोः किल कर्म
कर्तव्यम् । एवंविदश्चिदादित्यस्योदयास्तमयाभावा-
त्सर्वकर्माभावः । शब्दकाललयेन दिवारात्र्यतीतो भूत्वा
सर्वपरिपूर्णज्ञानेनोन्यान्यवस्थावशेन ब्रह्मैक्यं
भवति । उन्मन्या अमनस्कं भवति । तस्य निश्चिन्ता
ध्यानम् । सर्वकर्मनिराकरणमावाहनम् ।
निश्चयज्ञानमासनम् । उन्मनीभावः पाद्यम् ।
सदाऽमनस्कमर्घ्यम् । सदादीप्तिरपारामृतवृत्तिः
स्नानम् । सर्वत्र भावना गन्धः । दृक्स्वरूपावस्थान-

मक्षताः । चिदाप्तिः पुष्पम् । चिदग्निस्वरूपं धूपः ।
चिदादित्यस्वरूपं दीपः । परिपूर्णचन्द्रामृतरसस्यैकीकरणं
नैवेद्यम् । निश्चलत्वं प्रदक्षिणम् । सोहंभावो नमस्कारः ।
मौनं स्तुतिः । सर्वसन्तोषो विसर्जनमिति य एवं वेद । ॥ २॥

उस समय वह पश्चिमाभिमुख (आन्तरिक) प्रकाश दृष्टिगोचर होता है, जिसकी आभा धूम्र वर्णिक स्फटिकमणि तुल्य, बिन्दु (मनस्तत्त्व), नाद (बुद्धि तत्त्व), कला (महत्तत्त्व), नक्षत्र, खद्योत (जुगनू), दीप, नेत्र, सुवर्ण और नवरत्न आदि जैसी होती है। वही प्रणव (ॐ) का स्वरूप है॥ प्राण और अपान वायु को एक करके कुम्भक धारण करे, तत्पश्चात् नासिकाग्र पर दृष्टि को एकाग्र करके दृढ़ भावना से करद्वय (दोनों हाथों) की अँगुलियों से षण्मुखी मुद्रा धारण करके 'प्रणव' (ॐ) नाद का श्रवण करे, इसमें मन लीन हो जाता है॥ ऐसा अभ्यास करने वाले को कर्म लिप्त नहीं करते। रवि के उदय और अस्त के समय (प्रातः-सायं) कर्म (धर्मकृत्य) सम्पन्न किये जाते हैं, किन्तु चिदादित्य (चैतन्य स्वरूप आदित्य) का तो उदय-अस्त होता ही नहीं, इसलिए उसे जानने (अथवा दर्शन करने वाले के लिए कोई कर्म शेष नहीं रहते॥ शब्द और काल के लय हो जाने से मनुष्य दिवा और रात्रि से अतीत होकर सभी का परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेता है, जिसके द्वारा उन्मनी अवस्था प्राप्त होती है और ब्रह्म के साथ एकत्व हो जाता है। उन्मनी अवस्था से व्यक्ति अमनस्क हो जाता है॥ निश्चिन्त अवस्था ही उसका ध्यान है। समस्त कर्मों का निराकरण (दूर करना) ही उसका आवाहन है। निश्चय ज्ञान ही उसका आसन है। उन्मन भाव (मनरहित होना) ही उसका पाद्य है। सदैव अमनस्क भाव ही अर्घ्य है। सतत

दीप्ति और अपार अमृतवृत्ति ही उसका स्नान है। सर्वत्र ब्रह्म भावना ही गन्ध है। दर्शन के स्वरूप का अवस्थान ही अक्षत है। चैतन्य की प्राप्ति ही पुष्प है। चैतन्य अग्नि का स्वरूप ही धूप है। चैतन्य आदित्य का स्वरूप ही दीप है। पंरिपूर्ण चन्द्र के अमृत का एकीकरण ही नैवेद्य है। निश्चलत्व ही प्रदक्षिणा है। 'सोऽहम्' भाव ही नमस्कार है। मौन ही स्तुति है। सभी प्रकार का सन्तोष ही उसका विसर्जन है। जो इस प्रकार जानता है (वह ब्रह्म स्वरूप हो जाता है)॥२॥

एवं त्रिपुट्यां निरस्तायां निस्तरङ्गःसमुद्रवन्निवात-
स्थितदीपवदचलसम्पूर्णभावाभावविहीनकैवल्यद्योतिर्भवति ।
जाग्रन्निन्दान्तःपरिज्ञानेन ब्रह्मविद्भवति ।
सुषुप्तिसमाध्योर्मनोलयाविशेषेऽपि महदस्त्युभयो-
र्भेदस्तमसि लीनत्वान्मुक्तिहेतुत्वाभावाच्च । समाधौ
मृदिततमोविकारस्य तदाकाराकारिताखण्डाकार-
वृत्त्यात्मकसाक्षिचैतन्ये प्रपञ्चलयः सम्पद्यते
प्रपञ्चस्य मनःकल्पितत्वात् । ततो भेदाभावात्कदाचि-
द्बहिर्गतेऽपि मिथ्यात्वभानात् । सकृद्विभातसदानन्दा-
नुभवैकगोचरो ब्रह्मवित्तदेव भवति । यस्य सङ्कल्पनाशः
स्यात्तस्य मुक्तिः करे स्थिता । तस्माद्भावाभावौ परित्यज्य
परमात्मध्यानेन मुक्तो भवति । पुनःपुनः सर्वावस्थासु
ज्ञानज्ञेयौ ध्यानध्येयौ लक्ष्यालक्ष्ये दृश्यादृश्ये
चोहापोहादि परित्यज्य जीवन्मुक्तो भवेत् । य एवं वेद ॥ ३॥

इस प्रकार जब (ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय स्वरूप) त्रिपुटी निरस्त (दूर) हो जाती है, तब तरंगहीन सागर के समान, वायुरहित स्थान में स्थित

दीपक की तरह अचल, सम्पूर्ण भाव और अभाव से विहीन कैवल्य-ज्योति प्रकट होती है, अर्थात् मात्र कैवल्यज्योति शेष रहती है॥ मंडलब्राह्मणोपनिषद् जिसे जाग्रदवस्था और निद्रावस्था में भी अन्तर्ज्ञान बना रहता है, वह ब्रह्मविद् होता है॥ सुषुप्ति और समाधि की स्थिति में मनोलय समान होने पर भी दोनों में महान् भेद है। सुषुप्ति में मन अज्ञान में लय हो जाता है, जिससे मुक्ति की स्थिति नहीं बनती॥ समाधि अवस्था में तमोविकार विनष्ट हो जाता है, जिसके कारण तदाकार और अखण्डाकार बने हुए वृत्ति रूप साक्षिचैतन्य में प्रपञ्च का विलय हो जाता है; क्योंकि प्रपञ्च मन:कल्पित होता है॥ तत्पश्चात् भेद के अभाव में समाधि से बाहर आने पर भी प्रपञ्च के मिथ्यात्व का बोध बना रहता है। एक बार सदानन्द का अनुभव हो जाने से वही प्रमुख विषय हो जाता है। इस प्रकार ब्रह्म को जानने वाला (ब्रह्मविद्) ब्रह्म ही हो जाता है॥ जिसके संकल्प विनष्ट हो गये हैं, उसी के हाथ में मुक्ति है। इसलिए (वह साधक) भाव और अभाव का परित्याग करके परमात्मा का ध्यान करने से मुक्त हो जाता है॥ इस प्रकार समस्त अवस्थाओं में बारम्बार ज्ञान और ज्ञेय, ध्यान और ध्येय, लक्ष्य और अलक्ष्य, दृश्य और अदृश्य तथा ऊहापोह आदि का परित्याग करके मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। जो इस प्रकार जानता है। (वह ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है)॥३॥

पञ्चावस्थाः जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयतुरीयातीताः ।
जाग्रति प्रवृत्तो जीवः प्रवृत्तिमार्गासक्तः ।
पापफलनरकादिमांस्तु शुभकर्मफलस्वर्गमस्त्विति

काङ्क्षते । स एव स्वीकृतवैराग्यात्कर्मफलजन्माऽलं
संसारबन्धनमलमिति विमुक्त्यभिमुखो निवृत्तिमार्ग-
प्रवृत्तो भवति । स एव संसारतारणाय गुरुमाश्रित्य
कामादि त्यक्त्वा विहितकर्माचरन्साधनचतुष्टयसम्पन्नो
हृदयकमलमध्ये भगवत्सत्तामात्रान्तर्लक्ष्यरूपमासाद्य
सुषुप्त्यवस्थाया मुक्तब्रह्मानन्दस्मृतिं लब्ध्वा
एक एवाहमद्वितीयः कञ्चित्कालमज्ञानवृत्त्या
विस्मृतजाग्रद्वासनानुफलेन तैजसोऽस्मीति तदुभयनिवृत्त्या
प्राज्ञ इदानीमस्मीत्यहमेक एव स्थानभेदादवस्थाभेदस्य
परंतु नहि मदन्यदिति जातविवेकः शुद्धाद्वैतब्रह्माहमिति
भिदागन्धं निरस्य स्वान्तर्विजृम्भितभानुमण्डलध्यान-
तदाकाराकारितपरंब्रह्माकारितमुक्तिमार्गमारूढः
परिपक्वो भवति । सङ्कल्पादिकं मनो बन्धहेतुः । तद्वियुक्तं
मनो मोक्षाय भवति । तद्वांश्चक्षुरादिबाह्यप्रपञ्चरतो
विगतप्रपञ्चगन्धः सर्वजगदात्मत्वेन पश्यंस्त्यक्ताहङ्कारो
ब्रह्माहमस्मीति चिन्तयन्निदं सर्वं यदयमात्मेति
भावयन्कृतकृत्यो भवति ॥ ४॥

पाँच अवस्थाएँ होती हैं-जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय और तुरीयातीत॥ इन पाँच अवस्थाओं में से जाग्रदवस्था में जीव प्रवृत्ति मार्ग में प्रवृत्त होता है, जिससे वह यह आकांक्षा करता है कि पाप का फल नरक मुझे न प्राप्त हो और शुभ कर्मों का फल स्वर्ग मुझे अवश्य प्राप्त हो॥ इस प्रकार वही जीव जब वैराग्य को स्वीकार कर लेता है, तब कर्मफल स्वरूप जन्म और संसार रूप बन्धन से मुक्ति प्राप्त करने का आकांक्षी होकर मुक्तिं की ओर अग्रसर होता है और निवृत्ति पथगामी होता है॥ (तत्पश्चात्) वही जीव संसार सागर से पार होने हेतु

गुरु का आश्रय लेकर, कामादि (विकारों का) परित्याग करके विहित (वेदोक्त) कर्म का आचरण करता हुआ साधन चतुष्टय (विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व) से सम्पन्न होता है और हृदय कमल के मध्य एकमात्र भगवत्सत्ता को अन्तर्लक्ष्य करके एक उसी के रूप का आश्रय लेकर सुषुप्ति अवस्था से मुक्त ब्रह्मानन्द की स्मृति पाकर ऐसा विचारता है (अनुभव करता है) कि मैं एक और अद्वितीय ही हूँ; किन्तु कुछ काल पूर्व अज्ञान ग्रसित होकर आत्म स्वरूप को भूल गया था और जाग्रदवस्था में स्थित वासना के फलस्वरूप स्वप्न में मेरा यह मानना था कि 'मैं तैजस हूँ।' उसी प्रकार जाग्रत् और स्वप्न इन दोनों अवस्थाओं से निवृत्ति हो जाने पर (सुषुप्तावस्था में) 'मैं प्राज्ञ हूँ। ऐसा मानता था; किन्तु अब 'मैं एक ही हूँ' ऐसा अनुभव होता है। स्थान भेद के कारण वे अलग-अलग अवस्थाएँ थीं; किन्तु मुझसे अतिरिक्त कुछ भी नहीं था, ऐसा विवेक होने से 'मैं शुद्ध अद्वैत ब्रह्म हूँ' यह अनुभव होता है, जिसके कारण भेदभाव की समस्त वासनाएँ (आरोपित वृत्तियाँ) दूर हो जाती हैं। साधक अपने भीतर प्रकाशित तेजोमण्डल का ध्यान करने से तदाकार बनकर परब्रह्म के स्वरूप को पाकर मुक्तिपथारूढ़ होता है और परिपक्व हो जाता है॥ संकल्प आदि से युक्त मन बन्धन का और उससे रहित मन मोक्ष का कारण होता है॥ उससे सम्पन्न (जीवित अवस्था में ही मोक्ष प्राप्त कर लेने वाला) साधक चक्षु आदि बाह्य प्रपञ्चों से उपरत हो जाता है। उसमें प्रपञ्चों की गन्ध तक शेष नहीं रहती। वह सम्पूर्ण जगत् को आत्म स्वरूप में देखता है और त्यक्त अहंकार होकर 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा चिन्तन करता हुआ 'यह सब कुछ आत्मा ही है, ऐसी भावना करता हुआ कृतकृत्य हो जाता है॥४॥

सर्वपरिपूर्णतुरीयातीतब्रह्मभूतो योगी भवति ।
तं ब्रह्मेति स्तुवन्ति । सर्वलोकस्तुतिपात्रः सर्वदेश-
संचारशीलः परमात्मगगने बिन्दुं निक्षिप्य
शुद्धाद्वैताजाड्यसहजामनस्कयोगनिद्राखण्डा-
नन्दपदानुवृत्या जीवन्मुक्तो भवति । तच्चानन्द-
समुद्रमग्ना योगिनो भवन्ति । तदपेक्षया इन्द्रादयः
स्वल्पानन्दाः । एवं प्राप्तानन्दः परमयोगी भवतीत्युपनिषत् ॥ ५॥

सब प्रकार से परिपूर्ण होकर वह तुरीयातीत योगी ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। यह ब्रह्म है, लोग इस प्रकार उसकी स्तुति करते हैं॥ वह समस्त लोकों की स्तुति का पात्र बनता है, समस्त लोकों में संचार करने वाला होता है और परमात्मा रूप गगन में बिन्दु स्थापित करके (चिदाकाश में मन को विलीन करके) शुद्ध, अद्वैत, जड़तारंहित, सहज और अमनस्क स्थिति रूपी योगनिद्रा में अखण्डानन्द का अनुसरण करके जीवन्मुक्त हो जाता है॥ उस आनन्द के समुद्र में मग्न रहने वाले (सिद्ध) योगी कहे जाते हैं॥ उन योगियों की अपेक्षा इन्द्रादि देवगण भी स्वल्प आनन्द प्राप्त करने वाले होते हैं। इस प्रकार परमानन्द प्राप्त करने वाला परम योगी होता है, यह (अद्भुत) रहस्य है॥५॥

॥ इति द्वितीयं ब्राह्मणम् ॥ २॥

॥ द्वितीय ब्राह्मण समात ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ मण्डलब्राह्मणोपनिषत् ॥

॥ मण्डल ब्राह्मण उपनिषद॥

तृतीयं ब्राह्मणम्-तृतीय ब्राह्मण

याज्ञवल्क्यो महामुनिर्मण्डलपुरुषं पप्रच्छ
स्वामिन्नमनस्कलक्षणमुक्तमपि विस्मृतं
पुनस्तल्लक्षणं ब्रूहीति । तथेति मण्डलपुरुषोऽब्रवीत् ।
इदममनस्कमतिरहस्यम् । यज्ज्ञानेन कृतार्थो
भवति तन्नित्यं शांभवीमुद्रान्वितम् । परमात्मदृष्ट्या
तत्प्रत्ययलक्ष्याणि दृष्ट्वा तदनु सर्वेशमप्रमेयमजं
शिवं परमाकाशं निरालम्बमद्वयं ब्रह्मविष्णुरुद्रादीना-
मेकलक्ष्यं सर्वकारणं परंब्रह्मात्मन्येव पश्यमानो
गुहाविहरणमेव निश्चयेन ज्ञात्वा भावाभावादिद्वन्द्वातीतः
संविदितमनोन्मन्यनुभवस्तदनन्तरमखिलेन्द्रियक्षयवशादमनस्क-
सुखब्रह्मानन्दसमुद्रे मनःप्रवाहयोगरूपनिवातस्थितदीपवदचलं
परंब्रह्म प्राप्नोति । ततः शुष्कवृक्षवन्मूर्च्छानिद्रामय-
निःश्वासोच्छ्वासाभावान्नष्टद्वन्द्वः सदाचञ्चलगात्रः
परमशान्तिं स्वीकृत्य मनः प्रचारशून्यं परमात्मनि लीनं भवति ।
पयस्रावानन्तरं धेनुस्तनक्षीरमिव सर्वेन्द्रियवर्गे परिनष्टे
मनोनाशं भवति तदेवामनस्कम् । तदनु नित्यशुद्धः
परमात्माहमेवेति तत्त्वमसीत्युपदेशेन त्वमेवाहमहमेव
त्वमिति तारकयोगमार्गेणाखण्डानन्दपूर्णः कृतार्थो भवति ॥ १॥

महामुनि याज्ञवल्क्य ने सूर्य मण्डल स्थित पुरुष से कहा-"हे स्वामी! आपने अमनस्क स्थिति के लक्षणों के विषय में मुझे उपदेश दिया, अब वह मुझे विस्मृत हो गया है, अतः कृपा करके पुनः उसके लक्षणों को मुझे बताएँ"॥ वह मण्डल पुरुष बोला-बहुत अच्छा, "यह अमनस्क स्थिति अतिरहस्यमय है। इसके ज्ञान से मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है और वह नित्य ही शाम्भवी मुद्रा से समन्वित होता है"॥ परमात्म दृष्टि से उसका अनुभव कराने वाले लक्ष्यों को देखकर सबके ईश्वर, अप्रमेय, अज, शिव (कल्याणकारी), परम आकाश, निरालम्ब, अद्वितीय, ब्रह्मा, विष्णु , रुद्र आदि के एकमात्र लक्ष्यरूप सभी के कारण परम ब्रह्म को आत्मरूप में देखने वाला पुरुष हृदयगुहा में ही विहार करता हुआ निश्चय पूर्वक जानकर, भाव-अभाव आदि द्वन्द्वों से अतीत होकर, मन की उन्मनी अवस्था का अनुभव करता है। तत्पश्चात् समस्त इन्द्रियों के (इन्द्रिय जन्य प्रवृत्ति के) क्षय होने पर, अमनस्क सुख रूप ब्रह्मानन्द सागर में उसका मनःप्रवाह बहता है, जिसके योग से वह वायुशून्य स्थल में स्थित दीपक के समान अचल परब्रह्म को प्राप्त करता है॥ तत्पश्चात् शुष्क वृक्षवत् मूच्छ और निद्रा की स्थिति में श्वासोच्छ्वास के अभाव में सुख-दुःख आदि द्वन्द्व विनष्ट हो जाते हैं और शरीर अचञ्चल हो जाता है। ऐसी स्थिति का व्यक्ति परम शान्ति को स्वीकार कर लेता है, जिससे मन प्रचार-शून्य बन जाता है तथा परमात्मा में लीन हो जाता है॥ जिस प्रकार दुग्ध दोहन कर लेने के उपरान्त वह गाय के स्तनों में नहीं रहता, उसी प्रकार समस्त इन्द्रिय वर्ग के विनष्ट हो जाने पर मन का भी विनाश हो जाता है-यही अमनस्क स्थिति है॥ इसके उपरान्त 'मैं ही नित्य शुद्ध परमात्मा हूँ इस प्रकार 'तत्त्वमसि' उपदेश प्राप्त हो

जाने से 'तुम ही मैं हूँ, 'मैं ही तुम हो' इस तारक योग मार्ग से अखण्डानन्द पाकर(साधक)पूर्णरूपेण कृतकृत्य हो जाता है॥१॥

परिपूर्णपराकाशमग्नमनाः प्राप्तोन्मन्यवस्थः
संन्यस्तसर्वेन्द्रियवर्गः अनेकजन्मार्जितपुण्यपुञ्जपक्व-
कैवल्यफलोऽखण्डानन्दनिरस्तसर्वक्लेशकश्मलो ब्रह्माहमस्मीति
कृतकृत्यो भवति । त्वमेवाहं न भेदोऽस्ति पूर्णत्वात्परमात्मनः ।
इत्युच्चरन्त्समालिङ्ग्य शिष्यं ज्ञप्तिमनीनयत् ॥ २॥

जिसका मन परमाकाश में पूर्णरूपेण मग्न हो गया हो, जिसे उन्मनी अवस्था प्राप्त हो गई हो एवं जो समस्त इन्द्रिय वर्ग से वियुक्त हो गया हो, अनेक जन्मों से प्राप्त हुए पुण्यपुञ्ज द्वारा उसका कैवल्य स्वरूप फल परिपक्व हो जाता है। अखण्डानन्द प्राप्त कर लेने से उसके समस्त क्लेश रूप पाप विनष्ट हो जाते हैं। तदुपरान्त 'मैं ब्रह्म हूँ' इस भाव से वह निरन्तर अभिभूत रहता हुआ कृतकृत्य हो जाता है॥ परमात्मा पूर्ण है, इसलिए 'तू ही मैं हूँ ऐसा उच्चारण करते हुए गुरु (मण्डल पुरुष) ने शिष्य (याज्ञवल्क्य) का आलिङ्गन (भेंट) करते हुए उसे इस ज्ञान का उपदेश किया था॥२॥

॥ इति तृतीयं ब्राह्मणम् ॥ ३॥

॥ तृतीय ब्राह्मण समाप्त ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ मण्डलब्राह्मणोपनिषत् ॥

॥ मण्डल ब्राह्मण उपनिषद॥

चतुर्थं ब्राह्मणम्-चतुर्थ ब्राह्मण

अथ ह याज्ञवल्क्यो मण्डलपुरुषं पप्रच्छ
व्योमपञ्चकलक्षणं विस्तरेणानुब्रूहीति । स
होवाचाकाशं पराकाशं महाकाशं
सूर्याकाशं परमाकाशमिति पञ्च भवन्ति ।
बाह्याभ्यन्तरमन्धकारमयमाकाशम् ।
बाह्यस्याभ्यन्तरे कालानलसदृशं पराकाशम् ।
सबाह्याभ्यन्तरेऽपरिमितद्युतिनिभं तत्त्वं महाकाशम् ।
सबाह्याभ्यन्तरे सूर्यनिभं सूर्याकाशम् ।
अनिर्वचनीयज्योतिः सर्वव्यापकं निरतिशयानन्दलक्षणं
परमाकाशम् । एवं तत्तल्लक्ष्यदर्शनात्तत्तद्रूपो भवति ।
नवचक्रं षडाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम् ।
सम्यगेतन्न जानाति स योगी नामतो भवेत् ॥ १॥

इसके बाद ऋषि याज्ञवल्क्य ने मण्डल पुरुष (सूर्यमण्डल स्थित पुरुष) से प्रश्न किया कि अब आप मुझे 'आकाश पञ्चक' का लक्षण सविस्तार बताएँ॥ उन्होंने कहा कि आकाश के पाँच प्रकार हैं- आकाश, पराकाश, महाकाश, सूर्याकाश और परमाकाश॥ जो

बाहर और भीतर से अन्धकारमय है, वह आकाश है। जो बाहर और भीतर से कालाग्नि सदृश है, वह पराकाश है। जो बाहर और अन्दर से अपरिमित कान्ति के समान है, वह तत्त्व महाकाश है। जो बाहर और भीतर से सूर्य सदृश है, वह सूर्याकाश है तथा जो अनिर्वचनीय ज्योति वाला सर्वव्यापक और अतिशय आनन्द के लक्षण से युक्त है, वह परमाकाश है॥ इस प्रकार मनुष्य जिस-जिस लक्ष्य का दर्शन करता है, वह उसी-उसी की तरह हो जाता है॥ जो नवचक्र (षड्चक्र तथा तालु, आकाश एवं भूचक्र), षड्आधार (मूलाधार आदि षड्आधार), त्रिलक्ष्य (अन्तर्लक्ष्य, बहिर्लक्ष्य एवं मध्यलक्ष्य) और व्योम पञ्चक (आकाश, पराकाश, महाकाश, सूर्याकाश और परमाकाश) को सम्यक् प्रकार से नहीं जानता है, वह नाममात्र का योगी है (अर्थात् योगी को इन सभी का ज्ञान होना आवश्यक है)॥१॥

॥ इति चतुर्थं ब्राह्मणम् ॥ ४॥

॥ चतुर्थ ब्राह्मण समाप्त ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ मण्डलब्राह्मणोपनिषत् ॥

॥ मण्डल ब्राह्मण उपनिषद॥

पंचमं ब्राह्मणम्-पांचवां ब्राह्मण

सविषयं मनो बन्धाय निर्विषयं मुक्तये भवति ।
अतः सर्वं जगच्चित्तगोचरम् । तदेव चित्तं निराश्रयं
मनोन्मन्यवस्थापरिपक्वं लययोग्यं भवति । तल्लयं
परिपूर्णे मयि समभ्यसेत् । मनोलयकारणमहमेव ।
अनाहतस्य शब्दस्य तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः ।
ध्वनेरन्तर्गतं ज्योतिर्ज्योतिरन्तर्गतं मनः ।
यन्मनस्त्रिजगत्सृष्टिस्थितिव्यसनकर्मकृत् ।
तन्मनो विलयं याति तद्विष्णोः परमं पदम् ।
तल्लयाच्छुद्धाद्वैतसिद्धिर्भेदाभावात् ।
एतदेव परमतत्त्वम् । स तज्ज्ञो बालोन्मत्त-
पिशाचवज्जडवृत्त्या लोकमाचरेत् एवममनस्काभ्यासेनैव
नित्यतृप्तिरल्पमूत्रपुरीषमितभोजनदृढाङ्गा-
जाड्यनिद्रादृग्वायुचलनाभावब्रह्मदर्शनाज्ज्ञात-
सुखस्वरूपसिद्धिर्भवति । एवं चिरसमाधिजनित-
ब्रह्मामृतपानपरायणोऽसौ संन्यासी परमहंस
अवधूतो भवति । तद्दर्शनेन सकलं जगत्पवित्रं भवति ।
तत्सेवापरोऽज्ञोऽपि मुक्तो भवति । तत्कुलमेकोत्तरशतं तारयति ।
तन्मातृपितृजायापत्यवर्गं च मुक्तं भवतीत्युपनिषत् ॥ ॥१॥

सविषय मन बन्धन का और निर्विषय मन मुक्ति का कारण होता है॥ अतः समस्त जगत् चित्तगोचर है। वही चित्त यदि निराश्रय हो जाए, तो मन उन्मनी अवस्था से परिपक्व होकर (ईश्वर में) लय होने योग्य बन जाता है॥ इस लय का परिपूर्ण 'मैं' में अभ्यास करना चाहिए, क्योंकि मनोलय का कारण 'मैं' ही हूँ॥ अनाहत शब्द और उस शब्द के अन्दर जो ध्वनि होती है, उस ध्वनि के अन्तर्गत ज्योति रहती है और ज्योति के अन्तर्गत मन होता है॥ जो मन त्रिजगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार रूप कर्म सम्पादन करता है, वही मन जिसमें विलय होता है, वह विष्णु का परम पद है॥ विष्णु के परमपद में लय होने से शुद्ध अद्वैत तत्त्व की सिद्धि होती है; क्योंकि उसमें भेद का अभाव रहता है। यही परमतत्त्व है॥ इस (परमतत्त्व) को जानने वाला बालकवत्, उन्मत्तवत् या पिशाचवत् जड़ वृत्ति से लोक (संसार) में आचरण करता है॥ इस प्रकार अमनस्क स्थिति के अभ्यास से नित्य तृप्ति का अनुभव होने लगता है। मल-मूत्र की मात्रा भी अल्प हो जाती है तथा स्वल्प आहार से काम चल जाता है। अङ्गों में दृढ़ता आ जाती है, शरीर में जड़ता नहीं रहती, निद्रा, नेत्र (आँख झपकने), वायु (श्वास) की (चंचल) गति समाप्त हो जाती है, जिसके फलस्वरूप) ब्रह्म दर्शन तथा अज्ञात सुखमय स्वरूप की सिद्धि हो जाती है॥ इस प्रकार दीर्घ काल तक समाधि की स्थिति के अभ्यास से उत्पन्न ब्रह्मामृत पान करने में परायण रहता हुआ संन्यासी अवधूत हो जाता है। उसके दर्शन से सम्पूर्ण जगत् पवित्र हो जाता है। उसकी सेवा में परायण रहने वाला अज्ञानी भी बन्धन से मुक्त हो जाता है। वह अपने कुल

की एक सौ एक पीढ़ियाँ तार देता है। उसके माता-पिता, पत्नी और सन्तति वर्ग भी मुक्त हो जाते हैं। ऐसा यह उपनिषद् है॥१॥

॥ इति पंचमं ब्राह्मणम् ॥ ४॥

॥ पांचवां ब्राह्मण समाप्त ॥

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

शान्तिपाठ

॥ हरिः ॐ ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वह परब्रह्म पूर्ण है और वह जगत ब्रह्म भी पूर्ण है, पूर्णता से ही पूर्ण उत्पन्न होता है। यह कार्यात्मक पूर्ण कारणात्मक पूर्ण से ही उत्पन्न होता है। उस पूर्ण की पूर्णता को लेकर यह पूर्ण ही शेष रहता है।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भगवान् शांति स्वरुप हैं अत: वह मेरे अधिभौतिक, अधिदैविक और अध्यात्मिक तीनो प्रकार के विघ्नों को सर्वथा शान्त करें ।

॥ इति मण्डलब्राह्मणोपनिषत्समाप्ता ॥

॥ मण्डल ब्राह्मण उपनिषद समात ॥

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥